नल दमयन्ती

शोभा कौर

संस्कृति एक व्यापक अवधारणा है; जिसके मूलतः दो रूप हैं- आंतरिक और बाह्य। आंतरिक स्तर पर संस्कृति जीवन जीने की मूल्य व्यवस्था है; जिसके अंतर्गत अध्यात्म, धर्म, दर्शन, इतिहास, राजनीति, अर्थनीति, ज्ञान-परम्परा, पर्यावरण और भाषा-साहित्य सब कुछ आचार-व्यवस्था के धरातल पर विद्यमान है और संस्कृति का बाह्य रूप इन्हीं जीवन मूल्यों से परिचालित होता हुआ व्यवहार में दिखता है जिसे किसी भी लोकमानस में व्याप्त खान-पान, रहन-सहन, पर्व-त्यौहार और मान्यताओं के रूप में सहज ही देखा जा सकता है। यह लोक व्यवहार सदियों से प्रदर्शनकारी कलाओं में विविध रूपों में प्रतिबिंबित होता रहा है। लोक संस्कृति पीढ़ी-दर-पीढ़ी निरंतर प्रवाहित होती रहती है, इन्हीं अर्थों में यह परम्परा और आधुनिकता को बरकरार रखे हुए है। प्रश्न उठता है कि वर्षों तक भारतवर्ष विदेशी आक्रान्ताओं के अत्याचारों से त्रसित रहा; तो ऐसे में लोक कलाएं कैसे सुरक्षित बची रही? जब लम्बे समय तक कलाओं को राजाश्रय मिलना बंद हो गया; तो भी जनमानस ने जीवन मूल्यों की उस धरोहर को कैसे संजो कर रखा? सांग लोकनाट्य परम्परा के विशेष सन्दर्भ में लख्मीचंद की क्या भूमिका है? नल- दमयन्ती लोकनाट्य में भारतीय लोक-संस्कृति के तत्त्व किस रूप में मिलते हैं?

भारतीय संस्कृति की जड़ें लोक से पोषित संवर्द्धित होती रही। लोक का सुख-दुःख, हर्ष उल्लास, पर्व-त्यौहार, मान्यताएं-आस्थाएं सब लोक साहित्य में श्रुति-स्मृति परम्परा में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक स्थानांतरित होता रहा। यही वह प्रमुख कारण है कि आज भी भारतीय अस्तित्व और संस्कृति लोक कलाओं में सुरक्षित बची हुई है। सांग लोकनाट्य परम्परा मूलतः हरियाणा प्रदेश में प्रचलित है। पं. लख्मीचंद को सांग लोकनाट्य का सिद्धहस्त माना जाता है। उन्होंने अपना पूरा जीवन इस लोकनाट्य की सेवा में समर्पित कर दिया। उनकी अप्रतिम प्रतिभा से प्रभावित होकर श्री राम नारायण अग्रवाल ने लिखा है, "इन सब सांगियों में लख्मीचंद सर्वाधिक प्रतिभावान थे। रागनी के वर्तमान जन्मदाता वास्तव में लख्मीचंद ही हैं। कबीर की भांति लोक भाषा में वेदांत तथा यौवन और प्रेम के मार्मिक चित्रण में लख्मीचंद बेजोड़ थे। उन जैसा लोक-जीवन का चितेरा स्वांगिया हरियाणे में दूसरा नहीं हुआ।"[1]

पं. लख्मीचंद ने अनेक स्वांग लिखे और खेले। उनके स्वांग के मुख्य विषय श्रृंगार और धर्म और नीति हैं। उनके श्रृंगार एवं प्रेम- प्रधान स्वांगों में प्रमुख हैं- नौटंकी, चन्द्रकिरण, हीर राँझा, राजभोजः सरन दे, ज्यानी चोर, चाप सिंह, हूर मेनका, शाही लकडहारा इत्यादि। धर्म और नीति प्रधान सांगों में राजा पूरनमल, राजा हरिश्चन्द्र, सेठ ताराचंद, चीर-पर्व, विरत-पर्व, नल-दमयन्ती, पद्मावत, भूप पुरंजन,और मीराबाई प्रमुख है। पं लख्मीचंद कृत सांग 'नल-दमयन्ती' में भी उनके अन्य स्वांगों की भांति भारतीय लोकसंस्कृति के तत्त्व विद्यमान हैं। पौराणिक धार्मिक आख्यानों में रचित उनके सांगों की प्रशंसा करते हुए डॉ. शंकरलाल यादव उचित ही कहते है कि, 'पं. लख्मीचंद ने इस क्षेत्र में एक दिशा दी। उन्होंने सांग को जो अभी पौराणिक एवं

धार्मिक आख्यानों पर आधरित थी, एक उन्मुक्त क्षेत्र में ला खड़ा किया। जीवन के साथ उनका सम्बन्ध स्थापित कर दिया। प्रेम और यौवन जो ग्रामीण जीवन की दो विभूतियाँ हैं, उसका अच्छा संयोग सांग में देखने को मिलता है।"[2]

डॉ. शशिभूषण सिंघल ने सांगों के परम्परित ढर्रे में क्रांतिकारी परिवर्तन लेन के लिए उनके साहसिक कदम की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए लिखा है कि, 'पंडित लख्मीचंद ने सांगों को परम्परित रुढियों से मुक्त करके उनमें प्रेम और यौवन का ऐसा ताना बुना कि देखने वाले दंग रह जाते थे।"[3]

पौराणिक सन्दर्भ (शास्त्र-मंथन):

पंडित लख्मीचंद ने कबीर की तरह 'मसि कागद छुयो नहीं, कलम गहि नहीं हाथ' फिर भी अपने सांगों में वेद, पुराण, श्रुति, स्मृति, उपनिषद, गीता, रामायण और महाभारत के प्रसंगों को प्रशंसनीय रूप में प्रस्तुत किया है। शास्त्रीय ज्ञान को लोकभाषा में घोलकर जनमानस को ऐसा अनोखा आसव पिलाया है कि रसास्वादन करने वाले प्रत्येक धन्य हो जाते हैं। उनके लोकनाट्यों में वेद-पुराण के प्रसंग हार में मोती-माणिक्य की भांति अनुस्यूत हैं।

पं. लख्मीचंद ने धर्म विषयक तत्वों का गम्भीर ज्ञान शास्त्रों के श्रवण के आधार पर दिया। पुरुष और लोक के तत्वों में साम्य स्थापित करके उन्होंने यह सिद्ध किया कि 'यत् यत् ब्रहामंडे तत तत पिंडे' अर्थात् जो कुछ ब्रह्मांड में है, वही मनुष्य के शरीर में भी है। उन्होंने वेद-शास्त्रों का साक्ष्य देकर गुण-समता के आधार पर इस तथ्य को रेखांकित किया है कि आत्मा और परमात्मा के गुण अभेद है।

वैदिक संस्कृति के प्रति अगाध श्रद्धाः

पं. लख्मीचंद का रोम-रोम वैदिक संस्कृति के रंग में रंगा हुआ था। जब उन्होंने लोगों को आदर्श जीवन से विमुख होकर पापाचार की दलदल में धंसते देखा तो वे मौन नहीं रह सके। उन्होंने धर्मविहीन नास्तिक लोगों की जमकर भर्त्सना की और सर्वत्र अज्ञान और छलकपट का बोलबाला देखकर कह उठे-

'समझ न सकते जगत के मन पै अज्ञान रूपी मल होग्या।

बेईमाने मैं मग्न रहें सै गाँठ-गाँठ मैं छल होग्या।

पं. लख्मीचंद के सांगों में अगस्त्य, मरीचि, कर्दम, पुलस्त, अत्री, भृगु, वशिष्ठ, गौतम, कणाद, विश्वामित्र, दुर्वासा, सनक, सनकादिक, शुकदेव, मनु, दत्तात्रेय, मार्कंडेय यमदग्नि, परशुराम, प्रद्युम्न, प्रहलाद, ध्रुव, अहिल्या, सीता, अरुंधती, चंद्रप्रभा, देवयानी, शर्मिष्ठा, कामधेनु, समुद्र-मंथन, आदि से संबद्ध अनेक पौराणिक अंतर्कथाओं की चर्चा है।

सत्यवान-सावित्री, नल-दमयन्ती, भूप-पुरंजन, विराट-पर्व, चीर- पर्व आदि सांगों में धर्म और नीति के ऐसे अनेक मार्मिक प्रसंग भरे पड़े हैं, जो भौतिकता की चकाचौंध से दिग्भ्रमित लोगों को धर्म का अमृतासव पिलाकर उन्हें जीवन की सही राह दिखा सकते हैं। इसी के साथ उन्होंने ढोंगी और पाखंडी योगियों पर भी

जमकर प्रहार किए हैं। बाह्य आडम्बरों को अनावश्यक बताते हुए उन्होंने सच्चे योगियों के ज्वलंत प्रमाण दिए हैं। जीवन की सार्थकता धर्म के मार्ग पर चलकर मोक्ष-प्राप्ति में है। मोक्ष प्राप्ति के लिए सदाचार, साधुओं की सेवा, सत्संग और षड्विकारों का त्याग जरूरी है। इस नश्वर संसार में आकर प्राणी अपने जीवन के मूल उद्देश्य को भूल जाता है। इसलिए उसे आवागमन की चक्की में पिसना पड़ता है। यदि धर्म की नौका में बैठकर कर्तव्य के चप्पुओं को चलाया जाए तो दुनिया की हर मुश्किल आसान हो सकती है और मनुष्य सहज ही अपनी मंजिल तक पहुँच सकता है। तभी तो लोकजीवन में कहा जाता है कि 'धर्म की जड़ सदा हरी'।

गुरु का महत्त्वः

भारतीय संस्कृति में गुरु का स्थान सर्वोपरि है। वस्तुतः हमारी संस्कृति के अधिष्ठाता गुरु ही रहे हैं। हमारे प्राचीन ग्रन्थों में गुरु के महत्त्व को प्रत्येक स्थान पर बहुत आदर सहित प्रतिपादित किया गया है। भाव प्रवणता के कारण गाँव के लोगों के मन में गुरु के प्रति श्रद्धा अधिक होती है। लख्मीचंद की दृष्टि में गुरु-सेवा का महत्व गंगा-स्नान से भी बढ़कर है, क्योंकि गुरु-ज्ञान की गंगा में गोते लगाकर मनुष्य परम-पद को प्राप्त कर सकता है। गुरु की कृपा से आत्मज्ञान होने पर मोक्ष के द्वार स्वतः ही खुल जाते हैं। वे कहते हैं-

लख्मीचंद कर सेवा शुरू, ज्ञान तै होग्ये पार धुरु।

म्हारे गुरु जी का रंग-ढंग, गंगा का अस्नान ध्यान-ज्ञान का

झकोला सै।।

स्वयं लख्मीचंद अपने गुरु की सेवा करने में दिन-रात उनसे ज्ञान प्राप्त करने में लीन रहते थे-

गुरु मानसिंह का नाम लेण तै काया में आनंद हुए।

चरणों में लौ-लीं दास शिष्य लख्मीचंद हुए।।

पं. लख्मीचंद भारतीय संस्कृति के आदर्श नायकों के चरित्र के माध्यम से उन सद्गुणों को उभारना चाहते हैं जिनकी वर्तमान में कमी खलती है। किन्तु इसके साथ ही वे उन चरित्र नायकों के उन दुर्गुणों को भी दिखाते हैं जिनके कारण उनका पतन हो गया। एक ओर नल की चारित्रिक विशेषताएं बताते हुए वे भारतीय नायक के गुणों से अवगत कराते हैं और साथ ही दूसरी ओर उसकी जुआ खेलने से उसके पतन को भी परस्पर चारित्रिक संघात के रूप में प्रस्तुत करते हैं। नल के चरित्र में अनेक दैवीय गुण हैं।

नल जंगल में फिरा करै था,

सदा अधर्म से डरा करै था,

प्राण खींच तप करा करै था,

सत मै पूरा तोल जिसका...।

घी सामग्री लगै थी हवन मै

भुप कै घाटा ना था धन मै

हर दम रहै थी नीत भजन मै

चित नहीं डामा डौल जिसका... (रागनी 3/3)

वेद शास्त्र उपनिषदों का सच्चा ज्ञान पढ़ें सै,

सब शास्त्रों का निर्णय करना न्यू गुणवान पढ़ें सै,

अतिथि पूज़ा साधू सेवा करकै यज्ञ दान पढ़ें सै,

युद्ध करता महारथी तेजस्वी न्यू बलवान पढ़े सै,

वेद तृप्त हो धर्म यज्ञ से ज्ञान की परमगति सै।। (रागनी 23/1)

लख्मीचंद लोकजीवन के चितेरे कलाकार हैं। उनके स्वांगों में लोकजीवन के कोई ऐसे आयाम नहीं हैं, जो उनकी दृष्टि से चूक गए हों। जन्म, शैशव, यौवन, विवाह, वैधव्य, अंतिम संस्कार आदि के साथ सामाजिक रीति-रिवाज, तीज-त्यौहार, खानपान, रिश्ते-नाते, कृषि कार्य, नृत्य-गायन, गीत-संगीत, यज्ञ-हवन, मान-मर्यादा, चोरी- डाके, छल-कपट, जुआबाजी, रिश्वतखोरी, प्रेम, इर्ष्या, धर्माधर्म आदि जीवन के सभी पहलुओं को उन्होंने अपने स्वांगों में संजोया है। हरियाणा की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि अपनी पूर्ण गरिमा के साथ उनके साहित्य में विद्‌यमान है। हरियाणा की लोक-मर्यादा में पुत्र-विवाह को भले ही देर हो जाए किन्तु यौवन प्राप्त पुत्री का विवाह समय पर कर देना अनिवार्य होता है। उनके विभिन्न स्वांगों में इस बात की चर्चा मिलती है। दमयन्ती के माता-पिता भी उसके विवाह की बात इसी सन्दर्भ में करते हैं-

चाहिए बात धर्म की कहणी

होगी तन में विपता सहणी

स्याणी बेटी कवारी रहणी

दिन दिन धर्म की हाणी होगी... (रागनी 10/2)

यहाँ यह बात भी महत्वपूर्ण है कि हमारी संस्कृति में कन्या को स्वयं अपना वर चुने की स्वतंत्रता थी। भले ही आने वाले समय में आक्रान्ताओं के भय और आतंक के कारण यह परम्परा बाधित हुई किन्तु प्राचीन अधिकांश कथाओं में इस बात के भरपूर संकेत मिलते हैं। दमयन्ती के विवाह के अवसर पर भी

स्वयंवर का आयोजन होता है। जिसमें देवता और मनुष्य बराबर भाग लेते हैं। हरियाणा में वर-वधू की जोट पहले ब्राह्मण और नाई मिलाया करते थे। जब कन्या के योग्य वर मिल जाता तो विवाह के लिए लग्न-मुहूर्त की बात चलती। ज्योतिष के हिसाब से गुरु-ब्राह्मण शुभ लग्न देखकर विवाह की तिथि निश्चित करते और फिर विवाह सम्पन्न होते।

भारतीय जनजीवन में पतिव्रता स्त्री का स्थान बहुत ऊँचा माना जाता है। पतिव्रता स्त्री अपने पति का वरन मन वचन से एक ही बार करती है, फिर उसे संसार की कोई भी शक्ति अपने निर्णय बदलने के लिए विवश नहीं कर सकती। नल-दमयन्ती के सन्दर्भ में भी हम यह देखते हैं जब चार देवता दमयन्ती से विवाह करने के लिए नल का रूप धारण कर लेते है तो वे प्रार्थना करती है कि मैंने मन, वचन और कर्म से नल को अपना पति चुन लिया है अब अगर आप मेरी और परीक्षा लेंगे तो नल के प्रेम में मैं अपने प्राण त्याग दूंगी-

सत संकल्प व्रत धर्म पुन मनै नल के लिए करे,

सब कर्तव्य मिल ज्यांगे धूल मै जै नल पति नहीं बरे,

मेरे मन का भाव प्रेम से समझो हे देवता लोग हरे

अपना वैसा ही रूप बनाओं तुम जैसे आप खरे

ना तै नल के फिकर मैं थारी शरण मैं खो दूँ अपनी ज्यान... (रागनी 20/3)

हरियाणा की लोक-संस्कृति में भी भारत के अन्य क्षेत्रों की भांति ही लोक-विश्वासों का विशेष महत्त्व है। लोक में पशु-पक्षियों को मानव भाषा में बात करते दिखाने की काव्य परम्परा प्रारम्भ से मिलती है। नल-दमयन्ती में भी हंस दोनों को मिलवाने की महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। हरियाणा में यह माना जाता है कि ज्येष्ठ सन्तान से सर्प डरता है, किन्तु उसे आकाशीय बिजली से सावधान रहना चाहिए। हिचकी आने पर समझा जाता कि कोई प्रियजन याद कर रहा है। इसके अतिरिक्त जादू-टोने, जंत्र-मन्त्र, शकुन-अपशकुन आदि अनेक ऐसे तत्व हैं जिनसे लोकसंस्कृति का इन्द्रधनुषी ताना-बाना निर्मित हुआ है। ऐसी लोक मान्यता है कि घर से शुभ कार्य के लिए निकलने पर कोई छींकना, विधवा नारी का बाल बिखेर कर मिलना, कुत्ते का कान मरना, बाई ओर कव्वे का बोलना, खाली घड़ा मिलना आदि अपशकुन/अनिष्टकर माने जाते हैं।

समाज में जुआ खेलना बुरा माना जाता है, क्योंकि इस खेल में लिप्त होकर मनुष्य अपना सब धर्म-कर्म नष्ट कर देता है। जुआ खेलना एक बहुत बड़ा ऐब है। जुएबाज का जीवन साक्षात् नरक है। नल-दमयन्ती सांग में राजा नल भले ही दैवीय गुणों से युक्त है किन्तु कलयुग उसके दिमाग को फेर देता है जिसके कारण वह राजा पुष्कर के साथ जुआ खेलते हुए अपना सारा राजपाट हार जाते हैं। उनकी पत्नी उसे अनेक बार अनेक प्रकार से जुआ खेलने से मना करती है परन्तु नल नहीं मानता और उसका भीषण परिणाम झेलने को विवश होता है और उसे अपनी पत्नी दमयन्ती के साथ वन में भूखा-प्यासा जीवन व्यतीत

करना पड़ता है। यहाँ तक कि तन पर ओढ़ने को वस्त्र तक नहीं रह जाता। ऐसे में नल एक रात अपनी पत्नी को आधे वस्त्र में लिपटा छोड़कर अकेले ही कहीं चला जाता है। बहुत ही मार्मिक ढंग से इस सांग का अंत इसी दुखद घटना पर किया गया है। लख्मीचंद जुए के दुष्परिणाम को इस प्रकार और भी सघन कर देते हैं।

कलयुग मिलकर पुष्कर के संग घी शक्कर सा होग्या,

बुद्धि भ्रष्ट हुई राजा नल की सिर मै चक्कर सा होग्या,

राणी बांदी बालक बच्चे सबने फिकर सा होग्या

राजा नल की हार होण का शहर मै जिकर सा होग्या

दमयन्ती की एक सुणी ना, कई बर बरजण आई... (रागनी24/2)

दमयन्ती ने देखा कि उसके पति की जुए में हार हो रही है तो उसे बड़ा भारी दुःख हुआ। वह राजा नल से हाथ जोड़कर एक अर्ज करती है कि पतिदेव खेल बंद कर दो। यह तुम्हारे और हमारे लिए बहुत बुरा हो रहा है। दमयन्ती बार-बार जुआ बंद करने को कहती है परन्तु राजा नल रानी की एक भी नहीं सुनता। ऐसे में रानी कहती है-

पति बिन किस तैं करूँ जिकर मै, ऐसा चढ़ग्या साँस शिखर मै

जिसने काल सुणी थी वै तेरे फिकर मै सारे रात्यूं जागे

(रागनी 27 / 1)

समसामयिक समस्याओं के प्रति सचेत दृष्टिकोणः

पं लख्मीचंद अपने समय में विद्यमान समस्याओं के प्रति अत्यंत सजग एवं सचेत रहे हैं। नल दमयन्ती के प्रारम्भ में ही वे पारिवारिक अलगाव और मतभेद को व्यक्त करते हुए घर-घर की महाभारत का उल्लेख करते हैं कि कैसे भाई-भाई में आज नहीं बनती माता-पिता और गुरुजनों की सेवा से युवा वंचित है। मित्र ही मित्र को दगा दे रहा है।

भाई धौरे मां जाया भाई चाहता बैठना पास नहीं

मात-पिता गुरु शिष्य नै कहै मेरे चरण का दास नहीं

बीर और मर्द कमाकै ल्यादे पेट भरन की आस नहीं

मित्र बण कै दगा कमाज्यां नौकर का विश्वास नहीं

जब से गारत महाभारत मै अठारा अक्षोणी दल होग्या (रागनी-1/1)

सिर्फ इतना ही नहीं वे भारत में व्याप्त अपने समय की प्राकृतिक आपदाओं को भी नल-दमयन्ती सांग में व्यक्त करते हैं। वे कहते हैं कि नियम, धर्म, व्रत और दान के छूट जाने से भारत पर जंजाल आन पड़े हैं। अब वर्षा कम होती है-

नियम धर्म तप दान छूटगे न्यूं भारत पै जाल पडै

इंद्र भी कम वर्षा करते जल बिन सुखे ताल पडै

बावन जनक हुए ब्रह्मज्ञानी वेद धर्म के ख्याल पडै

राजा शील धवज के बारे मै बारह वर्ष तक काल पडै

उस काल का कर्ण समझाण खात्र त्यार जनक का हल होग्या (रागनी 1/2)

भले ही यह एक पौराणिक कथा के अकाल का सन्दर्भ है किन्तु यह नहीं भूलना चाहिए कि जितने अकाल अंग्रेजों के काल में पड़े और जो दुर्व्यवहार उन्होंने भारतीय जनता के साथ किया उतना शायद ही कभी भारत ने झेला हो। मुगल काल में भी अकाल और प्रकृतिक आपदा के समय कुछ रियायत मिल जाती थी किन्तु अंग्रेजों के समय बहुत कठोरता से कर वसूले जाते थे। वे यह भी चिंता व्यक्त करते हैं कि आज के भारतीयों को अपनी समृद्ध परम्परा का ज्ञान तक नहीं है। आज लोग शिक्षा, कल्प, व्याकरण, ज्योतिष, निरुक्त और छंद की जानकारी नहीं रखते। न ही आज लोग श्रुति-स्मृति महाभारत और पुराणों पर यकीन करते हैं। वे कहते हैं कि बिना सद्गुरु के ज्ञान के कोई भी उपनिषद का ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकता। बिना विद्या अर्जित किए कोई भी गुरु, माता पिता और छोटे बड़े के महत्त्व को नहीं समझ सकता। सत्य, निष्ठा और पूर्ण विधि की जानकारी के बिना सारे कर्तव्य निष्फल हो रहे हैं।

शिक्षा कल्प व्याकरण ज्योतिष निरुक्त छंद की जाण नहीं

श्रुती समृति महाभारत समझे अठारह पुराण नहीं

बिन सतगुरु के उपनिषदों के ज्ञान की कोई पहचान नहीं

पढ़े लिखे बिन मात पिता गुरु छोटे बड़े की काण नहीं

सत पत गोपत विधि भाग बिन सब कर्तव्य निष्फल होग्या (रागनी 1/3)

प्रश्न उठता है प. लख्मीचंद यह चिंता किस समय और किन सन्दर्भों में व्यक्त कर रहे हैं? यह सामान्य चिंता नहीं है। पं लख्मीचंद का जन्म 1903 ई. का है अर्थात् भारत उस समय अंग्रेजों के पूरी तरह से गुलाम हो चुका था। इसलिए उनके द्वारा व्यक्त चिंताएं औपनिवेशिक भारत के प्रश्न और चिंताएं हैं। मैकाले की शिक्षा पद्धति के कारण भारतीय शिक्षा व्यवस्था से धर्म और अध्यात्म को बाहर निकाला जा चुका था। एक तरफ अंग्रेज भौतिक उन्नति के लिए भारतीयों का खून पी रहे थे और दूसरी तरफ उन्हें

अपनी परम्परा से काटकर बौद्धिक गुलाम बनाया जा रहा था। ऐसे में पं. लख्मीचंद ने लोकमानस का मनोविज्ञान समझते हुए प्रेम कथाओं के माध्यम से भी अपने पारम्परिक ज्ञान को सरल और रोचक भाषा में व्यक्त किया है। उनकी प्रत्येक कथा में वर्तमान की कोई न कोई समस्या का संकेत मिलता है।

सांग कला के क्षेत्र में पं. लख्मीचंद की क्रांतिकारिता का मूल्यांकन करते हुए श्री देवीशंकर प्रभाकर ने ठीक ही लिखा है, 'कभी-कभी कला के इतिहास में कुछ एक ऐसे चमत्कारिक व्यक्तित्व उभरते हैं, जो स्वयम ही इतिहास बन जाते हैं। हरियाणवी लोकनाट्य के इतिहास में भी एक ऐसी ही घटना घटी जब सोनीपत जिले का एक अनपढ़ ग्वाला प्रकाश-बिम्ब बनकर आया और हरियाणवी लोकनाट्य के सम्पूर्ण शिल्प-विधान को अपने प्रवाह में बहा कर ले गया। वह था हरियाणा का सर्वश्रेष्ठ लोकनाट्यकार पं. लख्मीचंद।"[4]

आधार ग्रन्थः

नल-दमयन्ती-पं. लख्मीचंद

संदर्भ सूचीः

1. रामनारायण अग्रवाल, सांगीतः एक लोकनाट्य परम्परा, पृष्ठ-122

2. डॉ. शंकरलाल यादव, हरियाणा प्रदेश का लोकसाहित्य, पृष्ठ 397

3. डॉ. शशिभूषण सिंघल, हरियाणा, पृष्ठ 40.

4. सप्त-सिन्धु (हरियाणवी लोकनाट्य) अक्तूबर-नवंबर 1968, पृष्ठ 56-57

- प्रो. शोभा कौर

आचार्य, हिन्दी विभाग,

किरोड़ीमल महाविद्यालय,

दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली